स्वामी विवेकानन्द

नया भारत गढ़ो

प्रथम अध्याय

हमारा राष्ट्र झोपड़ियों में बसता है

हमारा पवित्र भारतवर्ष धर्म एवं दर्शन की पुण्य-भूमि है। यहीं बड़े बड़े महात्माओं तथा ऋषियों का जन्म हुआ है, यही संन्यास एवं त्याग की भूमि है तथा यहीं – केवल यहीं – आदि काल से लेकर आज तक मनुष्य के लिए जीवन के सर्वोच्च आदर्श एवं मुक्ति का द्वार खुला हुआ है।[१]

प्रत्येक राष्ट्र की एक विशिष्टता होती है, अन्य सब बातें उसके बाद आती हैं। भारत की विशिष्टता धर्म है। समाज-सुधार और अन्य सब बातें गौण हैं।[२]

(हमारी) जाति अभी भी जीवित है, धुकधुकी चल रही है, केवल बेहोश हो गयी है। ... देश का प्राण धर्म है, भाषा धर्म है तथा भाव धर्म है। तुम्हारी राजनीति, समाजनीति, रास्ते की सफाई, प्लेग-निवारण, दुर्भिक्षपीड़ितों को अन्नदान आदि आदि चिरकाल से इस देश में जैसे हुआ है, वैसे ही होगा अर्थात् धर्म के द्वारा यदि होगा तो होगा अन्यथा नहीं। तुम्हारे रोने-चिल्लाने का कुछ भी असर न होगा।[३] अत: यदि तुम धर्म का परित्याग करने की अपनी चेष्टा में सफल हो जाओ और राजनीति, समाजनीति या किसी दूसरी चीज को अपनी जीवन-शक्ति का केन्द्र बनाओ, तो उसका फल यह होगा कि तुम एकबारगी नष्ट हो जाओगे।[४]

संसार के इतिहास का अनुशीलन करने से प्रतीत होता है कि प्राकृतिक नियमों के वश ब्राह्मण आदि चारों वर्ण क्रम से पृथ्वी का भोग करेंगे।[५] समाज का नेतृत्व विद्या-बल से प्राप्त हुआ हो, चाहे बाहु-बल से अथवा धन-बल से, पर उस शक्ति का आधार प्रजा ही है।[६]

जिनके रुधिर-स्राव से मनुष्यजाति की यह जो कुछ उन्नति हुई है, उनके गुणों का गान कौन करता है? लोकजयी धर्मवीर, रणवीर, काव्यवीर, सब की आँखों पर, सब के पूज्य हैं; परंतु जहाँ कोई नहीं देखता, जहाँ कोई एक वाह वाह भी नहीं करता, जहाँ सब लोग घृणा करते हैं, वहाँ वास करती है अपार सहिष्णुता, अनन्य प्रीति और निर्भिक कार्यकारिता; हमारे गरीब, घर-द्वार पर दिनरात मुँह बंद करके कर्तव्य करते जा रहे हैं; उसमें क्या वीरत्व नहीं है?[७]

ये जो किसान, मजदूर, मोची, मेहतर आदि हैं, इनकी कर्मशीलता और आत्मनिष्ठा तुममें से कइयों से कहीं अधिक है। ये लोग चिरकाल से चुपचाप काम करते जा रहे हैं, देश का धन-धान्य उत्पन्न कर रहे हैं, पर आपने मुँह से शिकायत नहीं करते।[८] माना कि उन्होंने तुम लोगों की तरह पुस्तकें नहीं पढ़ी हैं, तुम्हारी तरह कोट-कमीज पहनकर सभ्य बनना उन्होंने नहीं सीखा, पर इससे क्या होता है? वास्तव में वे ही राष्ट्र की रिढ़ हैं। यदि ये निम्न श्रेणियों के लोग अपना अपना काम करना बंद कर दें तो तुम लोगों को अन्न-वस्त्र मिलना कठिन हो जाय। कलकत्ते में यदि मेहतर लोग एक दिन के लिए काम बंद कर देते हैं तो 'हाय तोबा' मच जाती है। यदि तीन दिन वे काम बंद कर दें तो संक्रामक रोगों से शहर बरबाद हो जाय। श्रमिकों के काम बंद करने पर तुम्हें अन्न-वस्त्र नहीं मिल सकता। इन्हें ही तुम लोग नीच समझ रहे हो और अपने को शिक्षित मानकर अभिमान कर रहे हो![९]

इन लोगों ने सहस्त्र सहस्त्र वर्षों तक नीरव अत्याचार सहन किया है, – उससे पायी है अपूर्व सहिष्णुता। सनातन दुःख उठाया, जिससे पायी है अटल जीवनीशक्ति। ये लोग मुट्ठीभर सत्तू खाकर दुनिया उलट दे सकेंगे।

आधी रोटी मिली तो तीनों लोक में इतना तेज न अटेगा! ये रक्तबीज के प्राणों से युक्त हैं। और पाया है सदाचार-बल, जो तीनों लोक में नहीं है। इतनी शांति, इतनी प्रीति, इतना प्यार, बेजबान रहकर दिनरात इतना खटना और काम के वक्त सिंह का विक्रम![१०]

बड़ा काम आने पर बहुतेरे वीर हो जाते हैं; दस हजार आदमियों की वाहवाही के सामने कापुरुष भी सहज ही में प्राण दे देता है; घोर स्वार्थपर भी निष्काम हो जाता है; परंतु अत्यंत छोटेसे कर्म में भी सब के अज्ञात भाव से जो वैसी ही निःस्वार्थता, कर्तव्यपरायणता दिखाते हैं, वे ही धन्य हैं – वे तुम लोग हो – भारत के हमेशा के पैरों तले कुचले हुए श्रमजीवियो! तुम लोगों को मैं प्रणाम करता हूँ।[११]

हमारी जनता को पार्थिव वस्तुओं के बारे में बहुत कम ज्ञान है। हमारे जन बहुत अच्छे हैं, क्योंकि यहाँ दरिद्र होना अपराध नहीं है। हमारी जनता हिंसक नहीं है। अमेरिका और इँगलैंड में मैं बहुत बार केवल अपनी वेश-भूषा के कारण भीड़ों द्वारा प्रायः आक्रांत किया गया हूँ। पर भारत में मैंने ऐसी बात कभी नहीं सुनी कि भीड़ किसी मनुष्य की वेश-भूषा के कारण उसके पीछे पड़ गयी हो।[१२] पाश्चात्य देशों के गरीब तो निरे पशू हैं, उनकी तुलना में हमारे यहाँ के गरीब देवता हैं। इसीलिए हमारे यहाँ के गरीबों को ऊँचा उठाना अपेक्षाकृत सहज है।[१३] अन्य सभी बातों में हमारी जनता यूरोप की जनता की अपेक्षा कहीं अधिक सभ्य है।[१४] लोग कहते हैं कि हमारे देश का जनसमुदाय बड़ी स्थूल बुद्धि का है, वह किसी प्रकार की शिक्षा नहीं चाहता और संसार का किसी प्रकार का समाचार जानना नहीं चाहता। पहले मूर्खतावश मेरा भी झुकाव ऐसी ही धारणा की ओर था। अब मेरी धारणा है कि काल्पनिक गवेषणाओं एवं द्रुतगति से सारे भूमंडल की परिक्रमा कर डालनेवालों तथा जल्दबाजी में पर्यवेक्षण करनेवालों की लेखनी द्वारा लिखित पुस्तकों के पाठ की अपेक्षा स्वयं अनुभव प्राप्त करने से कहीं अधिक शिक्षा मिलती है। अनुभव के द्वारा यह शिक्षा मुझे मिली है कि हमारे देश का जनसमुदाय निर्बोध और मंद नहीं है, वह संसार का समाचार जानने

के लिए पृथ्वी के अन्य किसी स्थान के निवासी से कम उत्सुक और व्याकुल भी नहीं है।[१५]

ब्राह्मणों ने ही तो धर्मशास्त्रों पर एकाधिकार जमाकर विधि-निषेधों को अपने ही हाथ में रखा था और भारत की दूसरी जातियों को नीच कहकर उनके मन में विश्वास जमा दिया था कि वे वास्तव में नीच हैं। यदि किसी व्यक्ति को खाते, सोते, उठते, बैठते, हर समय कोई कहता रहे कि 'तू नीच है', 'तू नीच है' तो कुछ समय के पश्चात् उसकी यह धारणा हो जाती है कि 'मैं वास्तव में नीच हूँ।' इसे सम्मोहित (हिप्नोटाइज) करना कहते हैं।[१६]

मैं तो जाति-पाँति के मामलों में किसी भी वर्ग के प्रति कोई पक्षपात नहीं रखता, क्योंकि में जानता हूँ कि यह एक सामाजिक नियम है और गुण एवं कर्म के भेद पर आधारित है।[१७]

जात-पाँत की ही बात लीजिए। संस्कृत में 'जाति' का अर्थ है वर्ग या श्रेणी विशेष। जाति का मूल अर्थ था प्रत्येक व्यक्ति की अपनी प्रकृति को, अपने विशेषत्व को प्रकाशित करने की स्वाधीनता और यही अर्थ हजारों वर्षों तक प्रचलित भी रहा।[१८]

जैसे हर एक व्यक्ति में सत्त्व, रज और तम, तीनों गुण न्यूनाधिक अंश में वर्तमान हैं, उसी प्रकार ब्राह्मण एवं क्षत्रिय आदि के गुण भी सब मनुष्यों में जन्मजात ही न्यूनाधिक मात्रा में विद्यमान रहते हैं। समय समय पर उनमें से एक न एक गुण अधिक प्रबल होकर, उनके कार्यकलापों में प्रकट होता रहता है। आप मनुष्य का दैनिक जीवनक्रम लें – जब वह अर्थ प्राप्ति के लिए किसी की सेवा करता है, तो वह शूद्र होता है; जब वह स्वयं अपने लाभ के लिए कोई क्रय-विक्रय करता है, तो उसकी वैश्य संज्ञा हो जाती है; जब वह अन्याय के विरुद्ध अस्त्र उठाता है, तो उसमें क्षात्र भाव सर्वोपरि होता है; और जब वह ईश्वरचिंतन में लगता है, भगवान का कीर्तन करता है, तो ब्राह्मणत्व को प्राप्त कर लेता है। यह स्पष्ट है कि मनुष्य के लिए एक जाति से दूसरी जाति में चला जाना संभव है। यदि नहीं, तो

विश्वामित्र ब्राह्मण कैसे बन सके?[१९] ... ब्राह्मण का पुत्र सर्वदा ब्राह्मण ही नहीं होता यद्यपि उसके ब्राह्मण होने की संभावना अवश्य होती है।[२०]

शिक्षा और अधिकार के तारतम्य के अनुसार सभ्यता सीखने की सीढ़ी थी – वर्णविभाग। यूरोप में बलवानों की जय और निर्बलों की मृत्यु होती है। भारत में प्रत्येक सामाजिक नियम दुर्बलों की रक्षा करने के लिए ही बनाया गया है।[२१]

विभिन्न श्रेणियों में विभक्त होना ही समाज का स्वभाव है। पर रहेगा क्या नहीं? – विशेष अधिकारों का अस्तित्व न रह जायगा। जातिविभाग प्राकृतिक नियम है। सामाजिक जीवन में एक विशेष काम मैं कर सकता हूँ, तो दूसरा काम तुम कर सकते हो। तुम एक देश का शासन कर सकते हो तो में एक पुराने जूते की मरम्मत कर सकता हूँ, किंतु इस कारण तुम मुझसे बड़े नहीं हो सकते – क्या तुम मेरे जूते की मरम्मत कर सकते हो? ... तुम वेदपाठ में निपुण हो। यह कोई कारण नहीं कि तुम इस विशेषता के लिए मेरे सिर पर पाँव रखो। तुम यदि हत्या भी करो तो तुम्हारी प्रशंसा और मुझे एक सेब चुराने पर ही फाँसी पर लटकना हो, ऐसा नहीं हो सकता। इसको समाप्त करना ही होगा।[२२] यदि मछुआ को तुम वेदांत सिखलाओगे तो वह कहेगा, हम और तुम दोनों बराबर हैं। तुम दार्शनिक हो, मैं मछुआ; पर इससे क्या? तुम्हारे भीतर जो ईश्वर है, वही मुझमें भी है। हम यही चाहते हैं कि किसी को कोई विशेष अधिकार प्राप्त न हो, और प्रत्येक मनुष्य की उन्नति के लिए समान सुभीते हों! सब लोगों को उनके भीतर स्थित ब्रह्मत्वसंबंधी शिक्षा दो। प्रत्येक व्यक्ति अपनी मुक्ति के लिए स्वयं चेष्टा करेगा।[२३]

यह एक विशेष रूप से ध्यान देने योग्य बात है कि प्राचीन भारत ने जिन दो सर्वश्रेष्ठ पुरुषों को जन्म दिया था, वे दोनों ही क्षत्रिय हैं – वे थे कृष्ण और बुद्ध। और यह उससे भी अधिक ध्यान देने योग्य बात है कि इन दोनों ही देवमानवों ने लिंग और जातिभेद को न मानकर सब के लिए ज्ञान का द्वार उन्मुक्त कर दिया था।[२४]

जाति-व्यवस्था सर्वदा बड़ी लचीली रही है, कभी कभी तो इतनी लचीली कि सांस्कृतिक दृष्टि से अति निम्नस्तरीय लोगों के स्वस्थ अभ्युदय की उसमें संभावना ही नहीं रही। कम से कम सैद्धांतिक दृष्टि से जाति-व्यवस्था ने समूचे भारत को संपत्ति के और तलवार के प्रभुत्व में न ले जाकर बुद्धि के – आध्यात्मिकता द्वारा परिशुद्ध और नियंत्रित बुद्धि के – निर्देशन में रखा। ... अन्य प्रत्येक देश में सर्वोच्च सम्मान क्षत्रिय को – जिसके हाथ में तलवार है – दिया गया है। भारत में सर्वोच्च प्रतिष्ठा शांति के उपासक को – श्रमण, ब्राह्मण, भगवत्पुरुष को – दी गयी है। – अन्य प्रत्येक देश का जातिविधान एक व्यक्ति को – स्त्री हो या पुरुष – पर्याप्त इकाई मानता है। संपत्ति, शक्ति, बुद्धि अथवा सौंदर्य किसी भी व्यक्ति के लिए अपने जन्म का जातीय स्तर त्यागकर कहीं भी ऊपर उठ जाने के लिए पर्याप्त साधन होते हैं। ... यहाँ भी व्यक्ति को इस बात का पूरा अवसर है कि एक निम्न जाति से उठकर उच्च या उच्चतम जाति तक पहुँच जाय। केवल एक शर्त है, परमार्थवाद के जन्मदाता इस देश में व्यक्ति को विवश किया गया है कि वह अपनी अपनी समूची जाति को अपने साथ ऊपर उठाये।[२५]

जाति वास्तव में क्या है, यह लाखों में से एक भी नहीं समझता। संसार में एक भी देश ऐसा नहीं है, जहाँ जाति-भेद न हो। भारत में हम जाति के द्वारा ऐसी स्थिती में पहुँचते हैं जहाँ जाति नहीं रह जाती। जाति-प्रथा सदा इसी सिद्धांत पर आधारित है। भारत में योजना है कि प्रत्येक मनुष्य को ब्राह्मण बनाया जाय; ब्राह्मण मानवता का आदर्श है। यदि आप भारत का इतिहास पढ़ेंगे, तो पायेंगे कि सदा नीचे वर्गों को ऊपर उठाने का प्रयत्न किया गया है।[२६]

जाति-भेद एक सामाजिक प्रथा मात्र है और हमारे बड़े बड़े आचार्यों ने उसे तोड़ने के प्रयत्न किये हैं। बौद्ध धर्म से लेकर सभी संप्रदायों ने जाति-भेद के विरुद्ध प्रचार किया है, परंतु ऐसा प्रचार जितना ही बढ़ता गया, जाति-भेद की शृंखला उतनी ही दृढ़ होती गयी। जाति-भेद की उत्पत्ति भारत

की राजनीतिक संस्थाओं से हुई है। वह तो वंशपरंपरागत व्यवसायों का समवाय (trade guild) मात्र है।[२७]

हमारा जाति-भेद और हमारी प्रथाएँ ... राष्ट्र के रूप में हमारी रक्षा के लिए आवश्यक थीं। और अब आत्मरक्षा के लिए इनकी जरूरत न रह जायगी तब स्वभावत: ये नष्ट हो जायँगी।[२८]

यूरोप और अमेरिका में जिस तरह का जाति-भेद है भारतीय जाति-भेद उससे अच्छा है। ... यदि जाति न होती, तो आज आप कहाँ होते? यदि जाति न होती, तो आपका ज्ञान-भंडार और दूसरी वस्तुएँ कहाँ होतीं? यदि जाति न होती, तो आज यूरोपवालों के अध्ययन करने के लिए कुछ भी न बचा होता। मुसलमानों ने सब कुछ नष्ट कर दिया होता। वह कौनसा स्थल है, जहाँ हम भारतीय समाज को स्थिर खड़ा पाते हैं? यह सदा, गतिमान रहा है। कभी कभी, जैसे कि विदेशी आक्रमणों के समय में, यह गति मंद रही है, पर दूसरे अवसरों पर अधिक तेज रही है। मैं अपने देशवासियों से यही कहता हूँ। मैं उन्हें दोष नहीं देता। मैं उनके अतीत में देखता हूँ कि ऐसी परिस्थितियों में कोई भी देश इससे अधिक शानदार काम नहीं कर सकता था। मैं उन्हें बताता हूँ कि आपने बहुत अच्छा काम किया है। और उनसे केवल और अच्छा करने के लिए कहता हूँ।[२९]

जाति निरंतर बदल रही है, अनुष्ठान बदल रहे हैं, यही दशा विधियों की है। यह केवल सार है, सिद्धांत है, जो नहीं बदलता।[३०]

जाति-व्यवस्था का नाश नहीं होना चाहिए; उसे केवल समय समय पर परिस्थितियों के अनुकूल बनाया जाना चाहिए। हमारी पुरानी व्यवस्था के भीतर इतनी जीवनी-शक्ति है कि उससे दो लाख नयी व्यवस्थाओं का निर्माण किया जा सकता है। जाति-व्यवस्था को मिटाने की बात करना कोरी बुद्धिहीनता है। नयी रीति यह है कि पुरातन का विकास हो।[३१]

संसार हमारे देश का अत्यंत ऋणी है। यदि भिन्न भिन्न देशों की पारस्परिक तुलना की जाय तो मालूम होगा कि सारा संसार सहिष्णु एवं निरीह भारत का जितना ऋणी है उतना और किसी देश का नहीं। ... पुराने

समय में और आजकल भी बहुतसे अनोखे तत्त्व एक जाति से दूसरी जाति में पहुँचे हैं, और यह भी ठीक है कि किसी किसी राष्ट्र की गतिशील जीवनतरंगों ने महान् शक्तिशाली सत्य के बीजों को चारों ओर बिखेरा है। परंतु भाइयो! तुम यह भी देख पाओगे कि ऐसे सत्य का प्रचार हुआ है – रणभेरी के निर्घोष तथा रण-सज्जा से सज्जित सेना-समूह की सहायता से। बिना रक्त प्रवाह में सिक्त हुए, बिना लाखों स्त्री-पुरुषों के खून की नदी में स्नान किये, कोई भी नया भाव आगे नहीं बढ़ा। ... प्रधानत: इसी उपाय द्वारा अन्यान्य देशों ने संसार को शिक्षा दी है; परंतु इस उपाय का अवलंबन किये बिना ही भारत हजारों वर्षों से शांतिपूर्वक जीवित रहा है। ... उससे भी पहले, जिस समय का इतिहास में कोई लेखा नहीं है, जिस सुदूर धुँधले अतीत की ओर झाँकने का साहस परंपराओं को भी नहीं होता, उस काल से लेकर अब तक न जाने कितने ही भाव एक के बाद एक भारत से प्रसृत हुए हैं, पर उनका प्रत्येक शब्द आगे शांति तथा पीछे आशीर्वाद के साथ कहा गया है।[३२]

अतएव हिंदू लोग अतीत का जितना ही अध्ययन करेंगे, उनका भविष्य उतना ही उज्ज्वल होगा; और जो कोई इस अतीत के बारे में प्रत्येक व्यक्ति को विज्ञ करने की चेष्टा कर रहा है, वह स्वजाति का परम हितकारी है। भारत की अवनति इसलिए नहीं हुई कि हमारे पूर्व पुरुषों के नियम एवं आचार-व्यवहार खराब थे, वरन् उसकी अवनति का कारण यह था कि उन नियमों और आचार-व्यवहारों को उनकी न्यायसंगत परिणति तक नहीं ले जाने दिया गया।[३३]

□□□

द्वितीय अध्याय

हमारा राष्ट्रीय महापाप

मैं समझता हूँ कि हमारा सब से बड़ा राष्ट्रीय पाप जनसमुदाय की उपेक्षा है, और वह भी हमारे पतन का एक कारण है।[१] भारत में दो बड़ी बुरी बातें हैं। स्त्रियों का तिरस्कार और गरीबों को जाति-भेद द्वारा पीसना।[२]

तुम अपने देश के लोगों की ओर एक बार ध्यान से देखो तो, मुँह पर मलिनता की छाया, कलेजे में न साहस, न उल्लास, पेट बड़ा, हाथ-पैरों में शक्ति नहीं; डरपोक और कायर![३] यथार्थ राष्ट्र जो झोपड़ियों में निवास करता है, अपना पौरुष विस्मृत कर बैठा है, अपना व्यक्तित्व खो चुका है।[४] इस भारतभूमि में जनसमुदाय को कभी भी अपनी आत्म-स्वत्व-बुद्धि को उद्दीप्त करने का मौका नहीं दिया गया।[५] हिंदू, मुसलमान या ईसाई के पैरों से रौंदे वे लोग यह समझ बैठे हैं कि जिस किसी के पास पैसा हो, वे उसी के पैरों से कुचले जाने के लिए ही पैदा हुए हैं।[६]

वे लोग जो किसान हैं, वे कोरी, जुलाहे जो भारत के नगण्य मनुष्य हैं, विजाति-विजित स्वजाति-निंदित छोटी छोटी जातियाँ हैं, वही लगातार चुपचाप काम करतीं जा रही हैं, अपने परिश्रम का कुछ भी नहीं पा रही हैं।[७]

फिर जिनके शारीरिक परिश्रम पर ही ब्राह्मणों का आधिपत्य, क्षत्रियों का ऐश्वर्य और वैश्यों का धन-धान्य निर्भर है, वे कहाँ हैं? समाज का मुख्य अंग होकर भी जो लोग सदा सब देशों में 'जघन्यप्रभवो हि सः' कहकर पुकारे जाते हैं, उनका क्या हाल है?[८] हे भारत के श्रमजीवियो, तुम्हारे नीरव, सदा ही निंदित हुए परिश्रम के फलस्वरूप बाबिल, ईरान, अलेकजंद्रिया, ग्रीस, रोम, वेनिस, जिनेवा, बगदाद, समरकंद, स्पेन

पोर्तुगाल, फ्रांसीसी, दिनेमार, डच और अंग्रेजों का क्रमान्वय से आधिपत्य हुआ और उनको ऐश्वर्य मिला है। और तुम? कौन सोचता है इस बात को![९]

जीवन-संग्राम में सदा लगे रहने के कारण निम्न श्रेणी के लोगों में अभी तक ज्ञान का विकास नहीं हुआ। ये लोग अभी तक मानवबुद्धि द्वारा परिचालित यंत्र की तरह एक ही भाव से काम करते आये हैं, और बुद्धिमान चतुर व्यक्ति इनके परिश्रम तथा कार्य का सार तथा निचोड़ लेते रहे हैं। सभी देशों में इसी प्रकार हुआ है। परंतु अब वे दिन नहीं रहे। निम्न श्रेणी के लोग धीरे धीरे यह बात समझ रहे हैं और इसके विरुद्ध सब सम्मिलित रूप से खड़े होकर अपने समुचित अधिकार प्राप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ हो गये हैं। यूरोप और अमेरिका में निम्नजातिय लोगों ने जागृत होकर इस दिशा में प्रयत्न भी प्रारंभ कर दिया है, और आज भारत में भी इसके लक्षण दृष्टिगोचर हो रहे हैं। निम्न श्रेणी के व्यक्तियों द्वारा आजकल जो इतनी हड़तालें हो रही हैं, वे इनकी इसी जागृति का प्रमाण है। अब हजार प्रयत्न करके भी उच्च जाति के लोग निम्न श्रेणियों को अधिक दबाकर नहीं रख सकेंगे। अब निम्न श्रेणियों के न्यायसगत अधिकार की प्राप्ति में सहायता करने में ही उच्च श्रेणियों का भला है।[१०]

जिनका ऐशो-आराम में लालन-पालन और शिक्षा लाखों पददलित परिश्रमी गरीबों के हृदय के रक्त से हो रही है और फिर भी जो उनकी ओर ध्यान नहीं देते, उन्हें मैं विश्वासघातक कहता हूँ। इतिहास में कहाँ और किस काल में आपके धनवान पुरुषों ने, कुलीन पुरुषों ने, पुरोहितों ने और राजाओं ने गरीबों की ओर ध्यान दिया था – वे गरीब, जिन्हें कोल्हू के बैल की तरह पेलने से ही उनकी शक्ति संचित हुई थी।[११]

भारतवर्ष के सभी अनर्थों की जड़ है – जनसाधारण की गरीबी। ... पुरोहिती शक्ति और विदेश विजेतागण सदियों से उन्हें कुचलते रहे हैं, जिसके फलस्वरूप भारत के गरीब बेचारे यह तक भूल गये हैं कि वे भी मनुष्य हैं।[१२] हमारे अभिजात पूर्वज साधारण जनसमुदाय को जमाने

से पैरों तले कुचलते रहे। इसके फलस्वरूप वे बेचारे एकदम असहाय हो गये। यहाँ तक कि वे अपने आपको मनुष्य मानना भी भूल गये।[१३] भारत के सत्यानाश का मुख्य कारण यही है कि देश की संपूर्ण विद्या-बुद्धि राज-शासन और दंभ के बल से मुट्ठी भर लोगों के एकाधिकार में रखी गयी है।[१४] भारत के दरिद्रों, पतितों और पापियों का कोई साथी नहीं, कोई सहायता देनेवाला नहीं – वे कितनी ही कोशिश क्यों न करें, उनकी उन्नति का कोई उपाय नहीं। वे दिन पर दिन डूबते जा रहे हैं। क्रूर समाज उन पर जो लगातार चोटें कर रहा है, उसका अनुभव तो वे खूब कर रहे हैं, पर वे जानते नहीं कि वे चोटें कहाँ से आ रही हैं।[१५] सदियों तक वे धनी-मानियों की आज्ञा सिर-आँखों पर रखकर केवल लकड़ी काटते और पानी भरते रहे हैं। उनकी यह धारणा बन गयी कि मानो उन्होंने गुलाम के रूप में ही जन्म लिया है।[१६] हमारे इस देश में, इस वेदांत की जन्मभूमि में हमारा जनसाधारण शत शत वर्षों से संमोहित बनाकर इस तरह की हीन अवस्था में डाल दिया गया है। उनके स्पर्श में अपवित्रता समायी है, उनके साथ बैठने से छूत समा जाती है। उनसे कहा जा रहा है, निराशा के अंधकार में तुम्हारा जन्म हुआ है, सदा तुम इस अँधेरे में पड़े रहो। और उसका परिणाम यह हुआ कि वे लगातार डूबते चले जा रहे हैं, गहरे अँधेरे से और गहरे अँधेरे में डूबते चले जा रहे हैं। अंत में मनुष्य जितनी निकृष्ट अवस्था तक पहुँच सकता है, वहाँ तक वे पहुँच चुके हैं।[१७]

क्या कारण है कि संसार के सब देशों में हमारा देश ही सब से अधिक बलहीन और पिछड़ा हुआ है? इसका कारण यही है कि वहाँ शक्ति का निरादर होता है।[१८] स्मृति आदि लिखकर, नियम-नीति में आबद्ध करके इस देश के पुरुषों ने स्त्रियों को एकदम बच्चा पैदा करने की मशीन बना डाला है।[१९] फिर अपने देश की दस वर्ष की उम्र में बच्चों को जन्म देनेवाली बालिकाएँ!!! प्रभु, मैं अब समझ रहा हूँ। हे भाई, **'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः'** (जहाँ नारियों की पूजा होती है, वहाँ देवता प्रसन्न रहते हैं) – वृद्ध मनु ने कहा है। हम महापापी हैं; स्त्रियों को 'घृणित किड़ा',

'नरक का द्वार' इत्यादि कहकर हम अध:पतित हुए हैं। बाप रे बाप! कैसा आकाश-पाताल का अंतर है। **'याथातथ्यतोऽर्थान् व्यदधात्'**। (जहाँ जैसा उचित हो ईश्वर वहाँ वैसा कर्मफल का विधान करते हैं। – ईशोपनिषद्) क्या प्रभु झूठी गप्प से भूलनेवाला है? प्रभु ने कहा है, **'त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उत वा कुमारी'** (तुम्हीं स्त्री हो और तुम्हीं पुरुष; तुम्हीं क्वाँरे हो और तुम्हीं क्वाँरी। – श्वेताश्वतरोपनिषद्) इत्यादि और हम कह रहे हैं, **'दूरमपसर रे चाण्डाल'** (रे चाण्डाल, दूर हट), **'केनैषा निर्मिता नारी मोहिनी'** (किसने इस मोहिनी नारी को बनाया है?) इत्यादि।[२०]

यह जाति डूब रही है। लाखों प्राणियों का शाप हमारे सिर पर है। सदा ही अजस्र जलधारवाली नदी के समीप रहने पर भी तृष्णा के समय पीने के लिए हमने जिन्हें नाबदान का पानी दिया, उन अगणित लाखों मनुष्यों का, जिनके सामने भोजन के भांडार रहते हुए भी जिन्हें हमने भूखों मार डाला, जिन्हें हमने अद्वैतवाद का तत्त्व सुनाया पर जिनसे हमने तीव्र घृणा की, जिनके विरोध में हमने लोकाचार का आविष्कार किया, जिनसे जबानी तो यह कहा कि सब बराबर हैं, सब वही एक ब्रह्म है, परंतु इस उक्ति को काम में लाने का तिलमात्र भी प्रयत्न नहीं किया।[२१]

पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिंदू धर्म के समान इतने उच्च स्वर से मानवता के गौरव का उपदेश करता हो, और पृथ्वी पर ऐसा कोई धर्म नहीं है, जो हिंदू धर्म के समान गरीबों और नीच जातिवालों का गला ऐसी क्रूरता से घोंटता हो।[२२] अब हमारा धर्म किसमें रह गया है? केवल छुआछूत में – मुझे छुओ नहीं, छुओ नहीं। हम उन्हें छूते भी नहीं और उन्हें 'दूर' 'दूर' कहकर भगा देते हैं। क्या हम मनुष्य हैं?[२३] हे भगवन्, कब एक मनुष्य दूसरे से भाईचारे का बर्ताव करना सीखेगा?[२४] धर्म में जाति-भेद नहीं है; जाति तो एक सामाजिक संस्था मात्र है।[२५] अत: धर्म का कोई दोष नहीं, दोष मनुष्यों का है।[२६]

कर्मकांडों से ऊबकर एवं दार्शनिकों की जटिल व्याख्या से विभ्रांत होकर लोग अधिकाधिक संख्या में जड़वादियों से जा मिले। यही जाति-

समस्या का सूत्रपात था एवं भारत में कर्मकांड, दर्शन तथा जड़वाद के मध्य उस त्रिभुजात्मक संग्राम का मूल भी यही था, जिसका समाधान हमारे इस युग तक संभव नहीं हो पाया है।[२७]

अवश्य ही जाति-धर्म उत्सन्न हो गया है। अतएव जिसे तुम लोग जाति-धर्म कहते हो, वह ठीक उसका उल्टा है। पहले अपने पुराण और शास्त्रों को अच्छी तरह पढ़ो तब समझ में आयेगा कि शास्त्रों में जिसे जाति-धर्म कहा गया है, उसका सर्वथा लोप हो गया है।[२८]

भारत के अध:पतन का कारण क्या था? जातिसंबंधी इस भाव का त्याग। जैसे गीता कहती है – जाति नष्ट हुई कि संसार भी नष्ट हुआ। ... आजकल का वर्ण-विभाग यथार्थ में जाति नहीं है, बल्कि जाति की प्रगति में वह एक रुकावट ही है। वास्तव में इसने सच्ची जाति अथवा विविधता की स्वच्छंद गति को रोक दिया है। ... प्रत्येक हिंदू जानता है कि किसी लड़के या लड़की के जन्म लेते ही ज्योतिषी लोग उसके जाति-निर्वाचन की चेष्टा करते हैं। वही असली जाति है – हर एक व्यक्ति का व्यक्तित्व, और ज्योतिष इसे स्वीकार करता है। और हम लोग केवल तभी उठ सकते हैं जब इसे फिर से पूरी स्वतंत्रता दें। याद रखें कि इस विविधता का अर्थ वैषम्य नहीं है, और न कोई विशेषाधिकार ही।[२९] प्रत्येक दृढ़मूल अभिजात वर्ग अथवा विशेष अधिकारप्राप्त संप्रदाय जाति का घातक है – वह जाति नहीं है। 'जाति' को स्वतंत्रता दो; जाति की राह से प्रत्येक रोड़े को हटा दो, बस, हमारा उत्थान होगा।[३०]

जो लोग कहते हैं कि अशिक्षित या गरीब मनुष्यों को स्वाधीनता देने से अर्थात् उनको अपने शरीर और धन आदि पर पूरा अधिकार देने, तथा उनके वंशजो को धनी और ऊँचे दर्जे के आदमियों के वंशजों की भाँति ज्ञान प्राप्त करने एवं अपनी दशा सुधारने में समान सुविधा देने से वे उन्मार्गगामी बन जायेंगे, तो क्या वे समाज की भलाई के लिए ऐसा कहते हैं अथवा स्वार्थ से अंधे होकर?[३१]

पुरोहित-प्रपंच ही भारत की अधोगति का मूल कारण है। मनुष्य अपने

भाई को पतित बनाकर क्या स्वयं पतित होने से बच सकता है? ... क्या कोई व्यक्ति स्वयं का किसी प्रकार अनिष्ट किये बिना दूसरों को हानि पहुँचा सकता है? ब्राह्मण और क्षत्रियों के ये ही अत्याचार चक्रवृद्धि ब्याज के सहित अब स्वयं के सिर पर पतित हुए हैं, एवं यह हजारों वर्ष की पराधीनता और अवनति निश्चय ही उन्हीं के कर्मों के अनिवार्य फल का भोग है।[३२]

जिन्होंने गरीबों का रक्त चूसा, जिनकी शिक्षा उनके धन से हुई, जिनकी शक्ति उनकी दरिद्रता पर बनी, वे अपनी बारी में सैकड़ों और हजारों की गिनती में दास बनाकर बेचे गये, उनकी संपत्ति हजार वर्षों तक लुटती रही, और उनकी स्त्रियाँ और कन्याएँ अपमानित की गयीं। क्या आप समझते हैं कि यह अकारण ही हुआ?[३३]

नीच जाति के लोगों से हमारी जनता बनी है, युग युग से ऊँची जातिवालों के अत्याचार से, उठते-बैठते ठोकरें खाकर एकदम वे मनुष्यत्व खो बैठे हैं और पेशेवर भिखमंगों जैसे हो गये हैं।[३४] वे हमारी शिक्षा के लिए धन देते हैं, हमारे मंदिर बनाते हैं, और बदले में ठोकरें पाते हैं।[३५]

अगर हमारे देश में कोई नीच जाति में जन्म लेता है, तो वह हमेशा के लिए गया-बीता समझा जाता है, उसके लिए कोई आशा-भरोसा नहीं।[३६] आइए, देखिए तो सही, ... त्रिवांकुर मैं जहाँ पुरोहितों के अत्याचार भारतवर्ष भर में सब से अधिक है, जहाँ एक एक अंगुल जमीन के मालिक ब्राह्मण है ... वहाँ लगभग चौथाई जनसंख्या ईसाई हो गयी है![३७] यह देखो न – हिंदुओं की सहानुभूति न पाकर मद्रास प्रांत में हजारों पेरिया ईसाई बने जा रहे हैं, पर ऐसा न समझना कि वे केवल पेट के लिए ईसाई बनते हैं। असल में हमारी सहानुभूति न पाने के कारण वे ईसाई बनते हैं।[३८]

भारत के गरीबों में इतने मुसलमान क्यों हैं? यह सब मिथ्या बकबाद है कि तलवार की धार पर उन्होंने धर्म बदला। ... जमींदारों और ... पुरोहितों से अपना पिंड छुड़ाने के लिए ही उन्होंने ऐसा किया, और फलतः आप देखेंगे कि बंगाल में जहाँ जमींदार अधिक हैं, वहाँ हिंदुओं से अधिक मुसलमान किसान हैं।[३९]

भंगियों और चांडालों को उनकी वर्तमान हीन दशा में किसने पहुँचाया?[४०] इसके लिए उत्तरदायी कौन है? मेरा मन बार बार यह जवाब देता है कि इसके लिए अंग्रेज उत्तरदायी नहीं हैं; बल्कि अपनी इस दुरवस्था के लिए, अपनी इस अवनति और इन सारे दुःख-कष्टों के लिए, एकमात्र हमीं उत्तरदायी हैं – हमारे सिवा इन बातों के लिए और कोई जिम्मेदार नहीं हो सकता।[४१] दोष उनका है, जो ढोंगी और दंभी हैं, जो 'पारमार्थिक' और 'व्यावहारिक' सिद्धांतों के रूप में अनेक प्रकार के अत्याचार के अस्त्रों का निर्माण करते हैं।[४२]

यह रोना-धोना मचा है कि हम बड़े गरीब हैं, परंतु गरीबों की सहायता के लिए कितनी दान-शील संस्थाएँ हैं? भारत के लाख लाख अनाथों के लिए कितने लोग रोते हैं? हे भगवान! क्या हम मनुष्य हैं? तुम लोगों के घरों के चतुर्दिक् जो पशुवत् भंगी-डोम हैं, उनकी उन्नति के लिए तुम क्या कर रहे हो? उनके मुख में एक ग्रास अन्न देने के लिए क्या करते हो?[४३]

तोते के समान बातें करना हमारा अभ्यास हो गया है – आचरण में हम बहुत पिछड़े हुए हैं। इसका क्या कारण है? शारीरिक दौर्बल्य।[४४] यह शारीरिक दुर्बलता कम से कम हमारे एक तिहाई दुःखों का कारण है। हम आलसी हैं। हम कार्य नहीं कर सकते; हम पारस्परिक एकता स्थापित नहीं कर सकते; हम एक दूसरे से प्रेम नहीं करते, हम बड़े स्वार्थी हैं, हम तीन मनुष्य एकत्र होते ही एक दूसरे से घृणा करते हैं, ईर्ष्या करते हैं।[४५]

अपने राष्ट्र में organization (संगठित होकर कार्यसंपादन करने) की शक्ति का एकदम अभाव है। वही अभाव सब अनर्थों का मूल है। मिलजुलकर कार्य करने के लिए कोई भी तैयार नहीं है। organization के लिए सब से पहले obedience (आज्ञापालन) की आवश्यकता है।[४६]

हमारे दो दोष बड़े ही प्रबल हैं; पहला दोष हमारी दुर्बलता है, दूसरा है घृणा करना, हृदयहीनता। लाखों मतमतांतरों की बात कह सकते हो,

करोड़ों संप्रदाय संगठित कर सकते हो, परंतु जब तक उनके दु:ख का अपने हृदय में अनुभव नहीं करते, वैदिक उपदेशों के अनुसार जब तक स्वयं नहीं समझते कि वे तुम्हारे ही शरीर के अंग हैं, जब तक तुम और वे – धनी और दरिद्र, साधु और असाधु सभी उसी एक अनंत पूर्ण के, जिसे तुम ब्रह्म कहते हो, अंश नहीं हो जाते, तब तक कुछ न होगा।[४७]

□□□